धर्मशास्त्रीय संस्कार व्यवस्था का पर्यालोचनः वर्तमान सन्दर्भों में

साधना देवी
शोधच्छात्रा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद।

भारतीय संस्कृति का मूल आधार धर्म है। यहाँ धर्म ऐसा सनातन और विभु है कि इसके अन्तराल में अनेक देशों के धर्म मात्र कर्मविवर्तमान अवस्थाओं के रूप में हैं। जैसे काम्य कर्म निष्काम में प्रतिष्ठित है, वैसे ही धर्म रहस्य समन्वय में प्रतिष्ठित है। गीता में श्रीकृष्ण ने जो सात्विक ज्ञान के विषय में बताया है, वह भी धर्म के इस रहस्य को उद्घाटित करता है–

''सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेशु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्।।''

धर्म शब्द 'धृञ' धारणे धातु से 'मन' प्रत्यय लगाने पर बना है। विविध शास्त्रकारों ने धर्म शब्द के भिन्न–भिन्न अर्थ किये हैं। निरुक्त में धर्म शब्द का अर्थ नियम बतलाया है। महर्षि कणाद ने धर्म का लक्षण ''यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्म'' इस प्रकार किया है। गौतम ने कहा है ''वेदों धर्ममूलम'' अर्थात् वेद ही धर्म का मूल है। मनुस्मृति में भी ''वेदोऽखिलो धर्ममूलम'' इस प्रकार कहा गया है। मीमांसा सूत्रकार जैमिनि ने धर्म की व्याख्या करते हुए वेदविहित प्रेरक लक्षणों को धर्म के रूप में स्वीकार किया है।[1]

इस प्रकार धर्म शास्त्रों में जो कुछ कहा गया है उसका आधार वेद ही है। वेदों ने जिन नियम या आचरण को मान्यता दी उसी आधार पर धर्म सूत्रों के नियमों की रचना हुई। वेद को श्रुति कहते हैं तो स्मृति को धर्म शास्त्र कहा जाता है।[2] धर्मशास्त्र के अन्तर्गत अनेक सूत्रग्रन्थ, टीकाग्रन्थ तथा स्मृति ग्रन्थों की रचना हुई जिनमें धर्मशास्त्र के विषयों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

[1] चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः– मीमांसासूत्र, 1.1.2
[2] श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः– मनुस्मृति, 20.10

संस्कार–

वैदिक कर्मकाण्डीय मन्त्रों से यह ज्ञात होता है कि संस्कारों का उदय वैदिक काल या उससे पहले हो चुका था। किन्तु संस्कार शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में उपलबध नहीं होता। यद्यपि 'सम' के साथ 'कृ' धातु तथा संस्कृत शब्द बहुधा मिल जाते हैं। ऋग्वेद में संस्कृत शब्द धर्म (बरतन) के लिए प्रयुक्त हुआ हैं। जैमिनि के सूत्रों में संस्कार शब्दयज्ञ के पवित्र या निर्मल कार्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जैसे– ज्योतिष्टोम यज्ञ में सिर के केश मुड़ाने, दाँत स्वच्छ करने, नाखून काटने के अर्थ में या प्रेक्षण आदि में प्रयुक्त हुआ है। जैमिनि ने संस्कार का उपनयन अर्थ भी किया है। इसके अतिरिक्त शबर स्वामी ने संस्कार का अर्थ किया है कि संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिए योग्य हो जाता है।[3] अद्वैत वेदान्ती जीव पर शारीरिक क्रियाओं के मिथ्या आरोप को संस्कार मानते है। नैयायिक भावों को व्यक्त करने की आत्म–व्यंजक शक्ति को संस्कार समझते हैं, जिसका परिगणन वैशेषिक दर्शन के चौबीस गुणों के अन्तर्गत किया है। संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग शिक्षा, संस्कृति, प्रशिक्षण, व्याकरण संबंधित शुद्धि, संस्करण आदि अर्थो में हुआ है।[4]

इस प्रकार संस्कार शब्द के साथ विलक्षण अर्थों का योग हो गया जो उनके दीर्घ इतिहास क्रम में इसके साथ संयुक्त हो गए। इसका अभिप्राय शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिस्कार के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों से है। किन्तु वर्तमान समय में इसका प्रयोग शुद्धि के अर्थ में किया जाता है। इसलिए परिभाषा की दृष्टि से आत्मा को परिशुद्ध करने एवं जीवन को विध्न बाधाओं से मुक्त करके उन्नतशील बनाने वाले धार्मिक सामाजिक अनुष्ठानों को संस्कार कहते हैं

संस्कारों की संख्या–

संस्कारों की संख्या के विषय में सभी धर्मशास्त्रकारों का एकमत नहीं है। गौतम ने संस्कारों की संख्या 40 बतायी है। वैखानस गृह्यसूत्र में 18 संस्कारों का उल्लेख किया गया

[3] संस्कारो नाम स भवति यस्मिन्जाते पदार्थों भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्या।– शाबरभाष्य, 4.1.3
[4] यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारों नान्यथा भवेत्।–हितोपदेश, 1–8

है। गृह्यसूत्रों में विवाह से आरम्भ कर समावर्तन पर्यन्त दैहिक संस्कारों का निरूपण किया गया है। गृह्यसूत्रों में अधिकांश अन्त्येष्टि का उल्लेख नहीं करते। गौतम ने भी अन्त्येष्टि का उल्लेख नहीं किया। केवल पाराशर, आश्वलायन तथा बौधायन गृह्यसूत्र ही इसका वर्णन करते हैं। गृह्यसूत्रों में संस्कारों का वर्णन दो अनुक्रमों में हुआ है– अधिकांश विवाह से प्रारम्भ कर उपनयन संस्कार तक चले आते हैं तथा हिरण्यकेशिगृह्य सूत्र, भारद्वाजगृह्य सूत्र एवं मानवगृह्य सूत्र उपनयन से आरम्भ करते हैं। कुछ संस्कार जैसे– कर्णभेद एवं विद्यारम्भ गृह्यसूत्रों में वर्णित नहीं है। सभी गृह्यसूत्रों ने संस्कारों की भिन्न–भिन्न सख्या बतायी है7

आश्वलायनगृह्य सूत्र– 1.विवाह 2. गर्भाधान 3. पुंसवन 4. सीमान्तोन्नयन 5. जातकर्म 6. नामकरण 7. चूड़ाकर्म 8. अन्नप्राशन 9. उपनयन 10. समावर्तन 11. अन्त्येष्टि।

पारस्कारगृह्य सूत्र–1.विवाह 2. गर्भाधान 3. पुंसवन 4. सीमान्तोन्नयन 5. जातकर्म 6. नामकरण 7. निष्क्रमण 8. अन्नप्राशन 9. चूड़ाकर्म 10. उपनयन 11. केशान्त 12. समावर्तन 13. अन्त्येष्टि।

अपास्तम्बगृह्य सूत्र–1.विवाह 2. उपनयन 3 समावर्तन 4. सीमान्तोन्नयन 5. पुंसवन 6. जातकर्म 7. नामकरण 8. अन्नप्राशन 9. चूड़ाकर्म 10. गोदान।

व्यास ने संस्कारों की संख्या 16 गिनायी है। मनु ने काई संख्या नहीं दी किन्तु गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक संस्कारों की ओर संकेत किया है। लेकिन वर्तमान में 16 संस्कार प्रमुख माने जाते हैं–

1. गर्भाधान 2. पुंसवन 3. सीमान्तोन्नयन 4. जातकर्म 5 नामकरण 6. निष्क्रमण 7. अन्नप्राशन 8. चूड़ाकर्म 9. कर्णबेध 10. विद्यारम्भ. 11. उपनयन 12. वेदारम्भ 13. केशान्त 14. समावर्तन 15. विवाह 16. अन्त्येष्टि।

संस्कारों का स्वरूप

1. गर्भाधान– मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक भट्ट के अनुसार गर्भाधान संस्कार होम के रूप में सम्पादित नहीं होता, किन्तु विवाहोपरान्त प्रथम काम के समय ही गर्भाधान संस्कार किया जाता है।[5]
2. पुंसवन– ''पुमान प्रसूयते येन तत्पुंसवनमीरितम्'' अर्थात् जिसके करने से पुत्रोत्पति होती है उसको पुंसवन संस्कार कहा जाता है। पुंसवन संस्कार में धार्मिक होम और पुत्र–प्राप्ति प्राचीन काल से ही मान्य है।
3. सीमान्तोन्नयन– यह संस्कार स्त्री के प्रथम गर्भ काल के चौथे महीने में किया जाता है। इनमें स्त्री के केशों के बीच की रेखा का उन्नयन किया जाता है– ''सीमान्तों उन्नीयते यस्मिन कर्मणि तत्''। मनु ने इस संस्कार का उल्लेख नहीं किया। याज्ञवल्क्य ने इसको केवलसीमान्त की संज्ञा दी है। यह संस्कार सामाजिक और औत्सविक है, क्योंकि यह केवल गर्भिणी को प्रसन्न रखने के लिए होता है।
4. जातकर्म– यह जन्म के उपरान्त किया जाने वाला संस्कार है। मनु ने कहा है कि जातकर्म संस्कार जातक के जन्म के पश्चात् उसके नाल काटने के पूर्व किया जाता है।[6]
5. नामकरण–यह संस्कार शिशु का नाम रखने से संबंधित है। नाम रखने की तिथि के विषय में गृहयसूत्रों एवं स्मृतियों में मतभेद है। याज्ञवल्क्य ने जन्म के ग्याहरवें दिन नामकरण की व्यवस्था नहीं है। आश्वलायन, शांखायन ने जन्म के दिन ही नामकरण का उल्लेख किया है। आपस्तम्ब एवं पारस्कर ने नामकरण के लिए 10वाँ दिन बताया है। मनुस्मृति के अनुसार दसवाँ या बारहवाँ दिन अथवा कोई शुभ तीथि मुहूर्त एवं नक्षत्र के साथ नामकरण को ठीक माना है।
6. निष्क्रमण– मनुस्मृति में कहा है कि शिशु का चौथे महीने में निष्क्रमण संस्कार करना चाहिए अर्थात् पिता के द्वारा शिशु के जन्म से चौथे महीने में घर से बाहर ले जाकर पूर्णिमा को चन्द्र दर्शन और शुभ दिन में सूर्य दर्शन कराया जाता है।

[5] मनुस्मृति, 2.27
[6] प्राङ् नाभिवर्धनात्पुंसे जातकर्म विधीयते– वही, 2.29

7. अन्नप्राशन– शिशु के जन्म के छठे महीने में अन्नप्राशन संस्कार किया जाता है। इसमें दही, मधु, घृत और भात मिलाकर चार मन्त्रों से शिशु को खिलाते हैं।

8. चूड़ाकर्म– 'चूड़ा' का अर्थ है 'बालगुच्छ' जो मुण्डित सिर पर रखा जाता है, इसको शिखा भी कहते हैं। चूड़ाकर्म में जन्म के पश्चात् पहली बार सिर पर एक शिखा रखी जाती है। इसे चौलकर्म संस्कार भी कहते हैं। यह जन्म के पहले या तीसरे वर्ष में किया जाता है।

9. कर्णबेध– यह संस्कार सातवें या आठवें मास में किया जाता है। शिशु के दाहिने कान में पहले तार से छेद कर उसको गोलाकार बांध दिया जाता है। कन्या जातक का पहले बायां कान छेदा जाता है।

10. विद्यारम्भ– विद्यारम्भ उपनयन से पहले किया जाता है। इसका समय पाँचवे वर्ष में बताया गया है।

11. उपनयन– उपनयन, मौञ्जीबंधन, वटुकरण और व्रतबन्ध समानार्थक है। वह संस्कार जिसके द्वारा शिशु को आचार्य के समीप ले जाया जाता है। इसके लिए उचित अवस्था या काल का निर्धारण है। ब्राह्मण का उपनयन गर्भाधान या जन्म से आठवे वर्ष में, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य का बारहवें वर्ष में उपनयन संस्कार होन चाहिए। 16 वर्ष बाद ब्राह्मण के, 22 वर्ष बाद क्षत्रिय के तथा 24 वर्ष बाद वैश्य के यज्ञोपवीत संस्कार कासमय बीत जाता है।

12. वेदारम्भ– वेदाध्ययन प्रारम्भ करने के पूर्व जो धार्मिक विधि की जाती है उसको वेदारम्भ संस्कार कहा जाता है। यह संस्कार उपनयन संस्कार वाले दिन या उससे एक वर्ष के अन्दर गुरुकुल में सम्पन्न होता है।

13. केशान्त– केशान्त संस्कार में सिर के तथा शरीर के अन्य भग जैसे दाढ़ी आदि केश बनाये जाते हैं। आपस्तम्बगृह्य सूत्र में इसे गोदान कहा गया है। मनु के अनुसार यह

संस्कर ब्राह्मण का 16वें वर्ष में, क्षत्रिय का गर्भ से 20वें वर्ष में तथा वैश्य का गर्भ में 24वें वर्ष में किया जाता है।

14. समावर्तन– वेदाध्ययन के उपरान्त ज्ञान कर्म और गुरु गृह्य से लौटते समय के संस्कार को स्नान या समावर्तन कहा जाता है।

15. विवाह– शिक्षा समाप्ति के उपरान्त गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने हेतु विवाह संस्कार का विधान किया गया है। विवाह संस्कार को सर्वोत्कृष्ट महत्ता प्रदान की गयी है। अधिकांश गृह्य सूत्रों ने संस्कारों का आरम्भ ही विवाह संस्कार से किया है। मनु ने विवाह संस्कार 25 वर्ष के बाद ही करने का निर्देश किया है।[7]

16. अन्त्येष्टि– अन्त्येष्टि का अर्थ अन्तिम यज्ञ है। मृत्यु के उपरान्त शरीर को भस्मसात् करने की विधि का वर्णन अन्त्येष्टि क्रिया विधि में है। वैदिक काल में यज्ञ की प्रधानता होने से मृत शरीर यज्ञाग्नि द्वारा दग्ध होता था। अतएव उस समय दाह संस्कार की प्रधानता थी।[8]

संस्कार प्रयोजन एवं उद्देश्य–

संस्कारों के जन्म की पृष्ठिभूमि में दो तत्त्वों पर विश्वास सहायक रहा है। पहला–अशुभ तत्त्वों से रक्षा किस तरह की जाये तथा दूसरा– शुभ तत्त्व जीवन के विकास में किस तरह सहायक हो। प्राचीन काल से ही मनुष्य का शुभ शक्तियों के साथ–साथ अमंगलकारी तत्त्वों के अस्तित्त्व में भी विश्वास रहा है जो शुभ कार्यों के निष्पादन में विध्न डालते हैं। इन आसुरि शक्तियों को संस्कारों में प्रयुक्त धार्मिक कर्मकाण्ड से दूर किया जा सकता है। इसलिए संस्कारों के अनुष्ठान का एक कारण मनुष्य के विकास और उन्नति के बीच आने वाली अशुभ शक्तियों की कृपा प्राप्त करना हो सकता है।

उपनयन जैसे संस्कारों का संबंध आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक उद्देश्यों से था। इस प्रकार के संस्कारों से गुण सम्पन्न व्यक्तित्त्व का निर्माण होता था, वेदाध्ययन का मार्ग खुलता

[7] द्वितीयमायुषो भागं कृतकारो गृहे वसेत्।–मनुस्मृति, 4.1
[8] ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः। अथर्ववेद, 18.2.34

था तथा अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त होती थी। संस्कारों के अध्ययन से पता चलता है कि उनका मनोवैज्ञानिक महत्त्व भी था। संस्कार करने वाला व्यक्ति एक नये जीवन का आरम्भ करता था, जिसके लिए नियम पालन करना उसके लिए आवश्यक था। नामकरण, अन्नप्राशन एवं निष्क्रमण जैसे संस्कारों का केवल लौकिक महत्त्व था, उनसे केवल स्नेह एवं उत्सवों की प्रधानता मात्र झलकती है। गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन जैसे संस्कारों का रहस्यात्मक एवं प्रतीकात्मक महत्त्व था। विवाह संस्कार का महत्त्व था दो व्यक्तियों का आत्म–निग्रह, आत्म–त्याग एवं परस्पर सहयोग के साथ समाज में रहकर आगे बढ़ते रहना।

संस्कारों का सबसे बड़ा उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होना था। मनुष्य यह विचार करने के लिए विवश हो जाता था कि वह समाज का अंग है। समाज के लिए उसका उत्तरदायित्व है, वह केवल व्यक्तिगत इकाई नहीं है। संस्कार उसे त्याग और सेवा भाव के लिए प्रेरित करते थे। वस्तुतः मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन ही संस्कारमय होता है।

मनु ने संस्कारों के प्रयोजन के विषय में कहा है कि गार्भ होम, जातकर्म, चूड़ाकर्म और मौञ्जीबन्धन संस्कार के अनुष्ठान से द्विजों के गर्भ तथा बीज सम्बन्धी दोष दूर हो जाते हैं।[9] संस्कार करने के पीछे लोगों का विश्वास था कि बीज और गर्भवास अपवित्र व अशुद्ध है और जातकर्म आदि संस्कारों के द्वारा ही इस मल या पाप से छुटकारा पाया जा सकता है। मनु के अनुसार स्वाध्याय, व्रत, होम, देव–ऋषियों के तर्पण, यज्ञ, सन्तानोत्पत्ति इज्या व पंचमहायज्ञों के अनुष्ठान से यह शरीर ब्रह्म प्राप्ति के योग्य हो जाता है।[10] यह धारणा भी समाज में प्रचलित थी कि उत्पन्न होते समय प्रत्येक व्यक्ति शूद्र होता है। अतः पूर्ण विकसित आर्य होने के लिए उसका संस्कार या परिमार्जन करना आवश्यक है। यह भी कहा गया है कि जन्म से प्रत्येक व्यक्ति शूद्र होता है, उपनयन से वह द्विज कहलाता है, वेदों के अध्ययन से वह विप्र बन जाता है और ब्रह्म के साक्षात्कार से उसे ब्राह्मण की स्थिति प्राप्त हो जाती है।[11]

---

[9] गार्भ्रैर्होमै जातकर्म चौड़ मौंजीनिबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकंचैनो द्विजानामपमृज्यते।।– मनुस्मृति, 2.27

[10] स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रै विद्यानेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।। वही, 2.28

[11] जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।–वही

समाज में विशेष अधिकार तथा वैयक्तिक सम्मान की दृष्टि से भी संस्कारों का विशेष महत्त्व था। उपनयन संस्कार समाज और उससे धार्मिक साहित्य में प्रविष्ट होने का एक प्रकार का प्रवेश पत्र था। उपनयन संस्कार द्विजों का विशेषाधिकार था तथा शूद्रों के लिए यह संस्कार वर्जित था।[12] संस्कार करने का विशेष उद्देश्य था वैदिक मन्त्रों के द्वारा उपनयन और विवाह संस्कार से किसी भी व्यक्ति को सभी प्रकार के यज्ञों के अनुष्ठान करने तथा समाज में अपने उन्नयन का अधिकार मिल जाता था।

संस्कारों के द्वारा मोक्ष प्राप्ति भी एक प्रयोजन रहा है, क्योंकि मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य मान लिया गया। अतः संस्कारों को भी स्वभावतः उसी की प्राप्ति का साधन समझा जाने लगा।[13]

संस्कार एवं शूद्र–

शूद्रों के विषय में देखा जाये तो उन्हें संस्कारों से वंचित ही रखा गया है, क्योंकि यह कहा गया है कि जन्म से प्रत्येक व्यक्ति शूद्र होता है, संस्कार के द्वारा ही वह द्विज कहलाता है। यदि इस दृष्टि से देखा जाये तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही द्विज कहे जाते हैं, शूद्र की द्विजत्व प्राप्ति के विषय में कहीं भी नहीं बताया गया।

व्यास ने कहा है कि शूद्र लोग बिना वैदिक मन्त्रों के गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, कर्णबेध एवं विवाह नामक संस्कार कर सकते हैं। बैजवापगृह्य सूत्र में गर्भाधान से लेकर चौल तक के सात संस्कार शूद्रों के लिए मान्य बताये हैं। याज्ञवल्क्य के अनुसार गर्भाधान से चौल तक 8 संस्कार शूद्रों सहित सभी वर्णों के लिए मान्य है। किन्तु मदनरत्न, रूपनारायण तथा निर्णयसिन्धु में उद्धृत हरिहर भाष्य के मत से शूद्र केवल 6 संस्कार जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म एवं विवाह तथा पंचाह्निक महायज्ञ ही कर सकते हैं। रघुनन्दन ने शूद्रकृत्यतत्त्व में लिखा है कि शूद्र के लिए

[12] आशूद्राणाम् दुष्टकर्मणामुपनयनम्।7 आपस्तम्बधर्मसूत्र, 1.1.16
[13] हिन्दू संस्कार, पाण्डेय, राजबलि, पृ0 3'9

पुराणों के मन्त्र ब्राह्मण द्वारा उच्चरित हो सकते हैं। शूद्र केवल नमः कह सकता है। ब्रह्मपुराण के अनुसार शूद्र के लिए केवल विवाह संस्कार मान्य है।

शूद्रों का कहीं भी उपनयन और वेदारम्भ संस्कार नहीं बताया गया, जबकि व्यक्ति को द्विज कहलाने का अधिकार उपनयन संस्कार के बाद ही था। उपनयन के विषय में कहा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य का उपनयन संस्कार विकल्प के बाद ही सम्पन्न न हो तो वह द्विजत्व से पतित समझा जाता और समाज से उसका बहिष्कार कर दिया जाता। तथा ऐसे व्यक्ति को ब्रात्य समझा जाता था। इन्हें आर्यों के समस्त धार्मिक व सामाजिक विशेषाधिकारों से वंचित कर दिया जाता था और उनका वर्गीकरण अनार्यों, व्रात्यों और शूद्रों के साथ किया जाता था।[14] इससे स्पष्ट ही है कि शूद्र आर्यसमाज से पतित थे।

आपस्तम्ब ने कहा है कि ब्रात्यस्तोम करके व्रात्य यज्ञोपवीत ले सकते हैं, किन्तु बिना प्रायश्चित या नाममात्र प्रायश्चित से ब्रात्यों को और अनधिकारी शूद्रों को यज्ञोपवीत देने वाले को अयाज्ययाजन का पाप लगता है तथा वह व्रात्य और शूद्र वैदिक कर्म करें तो उन्हें पुण्य न होकर उलटा पाप लगता है।[15]

वर्तमान समय में संस्कारों की स्थिति–

वर्तमान समय में संस्कार न तो मूल रूप से अनुष्ठानित किए जाते हैं और न ही उन्हें कोई विशेष महत्त्व दिया जाता है। वर्तमान में अनेक संस्कारों को या तो त्याग दिया गया है या उन्हें आवश्यकतानुसार संशेधित करके रीति–रिवाज के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। वर्तमान समय में हमें जो धार्मिक अनुष्ठान दिखायी देते हैं वे जातीय आधार पर विभक्त हैं तथा उन्हें हम संस्कार के रूप में न देखकर पृथक–पृथक रूप में अपने अनुसार अपनाये गये रीति–रिवाज के रूप में देखते है।

[14] शूद्राणाञ्चसधर्माणः। मनुस्मृति, 10.41
[15] मनुस्मृति, पृ0 75

आजकल गर्भाधान, उपनयन और विवाह नामक संस्कारों के अतिरिक्त अन्य संस्कारों का विधान लुप्त प्राय सा हो गया है। कहीं–कहीं गर्भाधान संस्कार भी त्यागा जा चुका है। नामकरण, अन्नप्रासन संस्कार किये जाते हैं, किन्तु वे मनाये जाते हैं।

समाज का आदिम स्थिति से विकास तथा मानवीय क्रियाओं की विविध शाखाओं का विभाग एवं विशेषिकरण भी संस्कारों के ह्रास का एक दूरव्यापी कारण था। वर्तमान समय में संस्कारों के अधिक अंग तथा महत्त्व लुप्त हो गए केवल उनकी धार्मिक पवित्रता ही खण्डित रूप में शेष रह गयी। संस्कार अब केवल विधि–विधान मात्र रह गये। इस समय संस्कार अधिकांशतः प्रभावहीन तथा निष्प्रयोजन कार्यक्रम के ही विषय रह गये।[16] फिर भी कुछ मात्रा में संस्कारो से लोगों का विश्वास जुड़ा हुआ है।

इस प्रकार धर्मशास्त्रों के अध्ययन एवं विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि संस्कार व्यवहार में मानवजीवन तथा उसके विकास की क्रमबद्ध योजना का कार्य करते थे। यद्यपि आज भी संस्कार कुछ विशेष अवसरों पर दिखाई देत`हैं किन्तु उनका स्वरूप बहुत हद तक बदल चुका है।

[16] हिन्दू संस्कार, पाण्डेय, राजबलि, पृ0 353